Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

कालिदास के नाटकों में चित्रकला एक परिदृश्य

डॉ0 ज्योति कपूर
एसोसियेट प्रोफेसर,
समन्वयक संस्कृत विभाग,
सदनलाल सांवलदास खन्ना
स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
इलाहाबाद,उत्तर प्रदेश, भारत।

शोध आलेख सार– किसी वस्तु को देखकर चित्र की जो आनन्दमयी अनुभूति होती है, वही सौन्दर्यानुभूति कहलाती है। चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, संगीत, काव्य सभी में कलाकार अपने उसी अनुभूत आनन्द को विभिन्न साधनों से मूर्ति रूप देना चाहता है। अतः सभी में रमणीयता रहती ही है। यद्यपि रमणीयार्थ प्रतिपादकता केवल काव्य में मानी गयी है; किन्तु अन्य कलाओं में इसका निषेध तो नहीं किया गया है। कला की यह श्रेष्ठता ही संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रमाण बनती है।

संस्कृत के कवियों का हृदय कला विलास का तथा बुद्धि विलास का विशाल प्रांगण होता था। वे सभी कलाओं एवं सभी विधाओं तथा सभी प्रकार के ज्ञानों का अपनी काव्यकृति में उपयोग करते थे। कविगुरू कालिदास ने अपनी रचनाओं में चित्र एवं संगीत का अद्भुत उपयोग किया है।

कला शब्द की सिद्धि संस्कृत में “कल” धातु से हुई है। जिसका अर्थ “संख्यान” है। ख्या धातु यहाँ “कथन” (कहना) के अर्थ में न होकर चक्षिङ्व्यक्तायाम् वाचि से संख्यान अर्थ में है। जिसका अर्थ “स्पष्ट वाणी में प्रकटन” होता है।

“कं लाति” इस व्युत्पत्ति के अनुसार “आनन्ददायक” अर्थ भी होता है। यह व्युत्पत्ति कलाकृति से सम्बन्धित है जो कला को सहृदयसंवेद्य बनाती है। काव्य में कला एक आवश्यक अंग है। आचार्य भरत ने कला की आवश्यकता के विषय में कहा है–“न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला”। अर्थात कला के अभाव में ज्ञान, शिल्प और विद्या का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित नहीं होता है।

कला का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। आचार्य भर्तृहरि ने भी कला को साहित्य और संगीत से अलग माना है– “साहित्यसंगीतकलाविहीनः”। कला को साहित्य और संगीत से अलग माना है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चित्र, संगीत और काव्य को कला के अन्तर्गत रखा गया है।

आधुनिक युग में कलाओं को प्रमुख चार भागों में बाँटा गया है।

GISRRJ20349 | Accepted : 08 Jan 2020 | Published : 20 Jan 2020 | January-February-2020 [3 (1) : 64-70]

1– दृश्य कलाएँ– चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तु।

2– मंचीय कलाएँ– नृत्य, संगीत, नाटक।

3– उपयोगी कलाएँ– विज्ञापन, वस्त्रालंकारण, आन्तरिक सज्जा तथा विविध शिल्प।

4– यन्त्रों में सुन्दर निर्माण।

उपर्युक्त कलाओं में चित्रकला को मुख्यकला के रूप में स्थान प्राप्त है। चित्रकला में चित्रकार चयन करता है। **'चीयते कृति चित्रम''।** वह अपने चित्र में अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् दोनों के भावों का चयन कर स्पष्ट करने का यत्न करता है।

चित्र में वात्स्यायनकथित षड अंगों का सम्यक निरूपण आवश्यक है वरना वह चित्र, चित्र कहलाने योग्य नहीं है। –

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्यवर्णिका भंग इति चित्रं षडंगकम्।।

संस्कृत साहित्य में चित्रकला की भरमार है। महाकवि कालिदास ने अपने नाटकों में चित्रकला का बहुतायत प्रयोग किया है।

कालिदास चित्रकला के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। वे चित्र के माध्यम से निर्जीव को सजीव का आभास कराने की चेष्टा में कुशल थे। यही कारण है कि कालिदास ने अपने काव्यों एवं नाटकों में कला के विभिन्न रूपों का दर्शन कराया है। कालिदास ने अपने नाटकों में चित्रकला का सहज प्रयोग वस्तु एवं स्थिति के अनुसार भावों को सजीवता प्रदान करने के लिये किया है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि यह कला सत्यमेव परमानन्ददायिनी होती है।

मुख्य शब्द– संस्कृत, कालिदास, नाटक, चित्रकला, सत्यमेव, काव्य।

किसी वस्तु को देखकर चित्र की जो आनन्दमयी अनुभूति होती है, वही सौन्दर्यानुभूति कहलाती है। चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, संगीत, काव्य सभी में कलाकार अपने उसी अनुभूत आनन्द को विभिन्न साधनों से मूर्ति रूप देना चाहता है। अतः सभी में रमणीयता रहती ही है। यद्यपि रमणीयार्थ प्रतिपादकता केवल काव्य में मानी गयी है; किन्तु अन्य कलाओं में इसका निषेध तो नहीं किया गया है। कला की यह श्रेष्ठता ही संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रमाण बनती है।

संस्कृत के कवियों का हृदय कला विलास का तथा बुद्धि विलास का विशाल प्रांगण होता था। वे सभी कलाओं एवं सभी विधाओं तथा सभी प्रकार के ज्ञानों का अपनी काव्यकृति में उपयोग करते थे। कविगुरू कालिदास ने अपनी रचनाओं में चित्र एवं संगीत का अद्‌भुत उपयोग किया है।

कला शब्द की सिद्धि संस्कृत में ''कल'' धातु से हुई है। जिसका अर्थ ''संख्यान'' है। ख्या धातु यहाँ ''कथन'' (कहना) के अर्थ में न होकर चक्षिङ्व्यक्तायाम् वाचि से संख्यान अर्थ में है। जिसका अर्थ ''स्पष्ट वाणी में प्रकटन'' होता है।

''कं लाति'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ''आनन्ददायक'' अर्थ भी होता है। यह व्युत्पत्ति कलाकृति से सम्बन्धित है जो कला को सहृदयसंवेद्य बनाती है। काव्य में कला एक आवश्यक अंग है। आचार्य भरत ने कला की आवश्यकता के विषय में कहा है– ''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला''।[1] अर्थात कला के अभाव में ज्ञान, शिल्प और विद्या का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित नहीं होता है।

कला का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। आचार्य भर्तृहरि ने भी कला को साहित्य और संगीत से अलग माना है– ''साहित्यसंगीतकलाविहीनः''[2]। कला को साहित्य और संगीत से अलग माना है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चित्र, संगीत और काव्य को कला के अन्तर्गत रखा गया है।

आधुनिक युग में कलाओं को प्रमुख चार भागों में बाँटा गया है।

1– दृश्य कलाएँ– चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तु।

2– मंचीय कलाएँ– नृत्य, संगीत, नाटक।

3– उपयोगी कलाएँ– विज्ञापन, वस्त्रालंकारण, आन्तरिक सज्जा तथा विविध शिल्प।

4– यन्त्रों में सुन्दर निर्माण।

उपर्युक्त कलाओं में चित्रकला को मुख्यकला के रूप में स्थान प्राप्त है। चित्रकला में चित्रकार चयन करता है। 'चीयते कृति चित्रम''। वह अपने चित्र में अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् दोनों के भावों का चयन कर स्पष्ट करने का यत्न करता है।

चित्र में वात्स्यायनकथित षड् अंगों का सम्यक निरूपण आवश्यक है वरना वह चित्र, चित्र कहलाने योग्य नहीं है। –

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।

सादृश्यवर्णिका भंग इति चित्रं षडंगकम्।।[3]

संस्कृत साहित्य में चित्रकला की भरमार है। महाकवि कालिदास ने अपने नाटकों में चित्रकला का बहुतायत प्रयोग किया है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार आलेख्य (चित्रकला) के समान सभी राग–रंग जिसमें सन्निविष्ट है ऐसा चित्तवृत्ति को आकर्षित करने वाला ''नाट्यगृह'' का वर्णन

किया है। यथार्थ से भिन्न रूप का संघात करने में कालिदास ने अक्षुण्ण प्रतिभा का परिचय दुष्यन्त के कथन के माध्यम से दिया है।

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा,
रुपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा में
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।[4]

ब्रह्मा ने जब शकुन्तला को बनाया होगा तब पहले उसका चित्र बनाकर या मन में संसार की सभी सुन्दरियों के रूपों को इकट्ठा करके उसमें प्राण डाले होगें। अनुसूया और प्रियवंदा ने चित्रों से बहुत कुछ सीखने की बात कही है।[5]

अभिज्ञान शाकुन्तल के षष्ठ अंक में माधवीलतामण्डप में लाये गये शकुन्तला की प्रतिकृति–अंकित चित्रफलक में भाव और रस दोनों का सम्मिश्रण है। चतुरिका चित्रफलक को राजा की ओर बढ़ाते हुए कहती है इयं चित्रगता भट्टिनी।[6] यह चित्र में अंकित स्वामिनी है। चित्रकला के पारखी राजा के मित्र विदूषक ने अंग विभक्तता का वर्णन करके चित्र की प्रशंसा की है– ''साधु वयस्य। मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव में दृष्टिर्निम्नोन्नत प्रदेशेषु।[7] अर्थात् चित्र बहुत सुन्दर है। इसमें भावों का संचार सुन्दर विन्यास के कारण दर्शनीय है। इसमें उच्च और निम्न स्थानों पर मेरी दृष्टि लड़खड़ाती सी है। राजा चित्र को देखकर कहते हैं कि चित्र में भावों को रेखा और रंगो में फिर से प्रवेश करा देना ही भावानुप्रवेश है।[8]

शकुन्तला की माता मेनका द्वारा भेजी गई सानुमती नामक अप्सरा राजा की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके पास आयी थी और तिरस्कारिणी विद्या के प्रभाव से अदृश्य सानुमती ने उस चित्र को देखकर कहा था– इस राजर्षि की निपुणता अद्भुत है ऐसा जान पड़ता है कि मेरी सखी शकुन्तला मेरे सामने खड़ी है ''अहो एषा राजर्षेनिपुणता। जाने सख्यग्रता मे वर्तत इति।''[9]

चित्र में प्रधान वस्तु को विशिष्टता से दिखलाया जाता है तभी विदूषक दुष्यन्त के बनाये शकुन्तला के चित्र में तीन देवियों में से शकुन्तला को सहज ही पहचान लेता है। चित्र में चित्रित भाव चिह्न (प्रेम चिह्न) का दृश्य।[10] राजा चित्र को देखकर चतुरिका से कहते हैं कि यह मनोरंजन की वस्तु अधूरी है अतः जाओ और कूची लेकर आओ–चतुरिके अर्द्धलिखितमेतद्विनोऽस्थानम्। गच्छ, वर्तिकां तावदानय।[11] राजा दुष्यन्त चित्राफलक लेकर चित्रांकित शकुन्तला पर प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। तथा उस पर शकुन्तला के अत्यन्त प्रिय मृगी, हंस, नदी, आश्रमस्थानों को दर्शाना चाहते हैं।

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनः।।
शाखाम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः

श्रृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।।[12]

राजा उस चित्रफलक में अंकित शिरीष का कर्णावतंस एवं कण्ठ में मृणालसूत्र बनाना चाहते हैं– मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे।[13] उत्तेजना में आये हुए राजा को देखकर उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के विचार से माधव ने कहा– ''भोः चित्रं खल्वेतत्''[14] अजी, यह चित्र है। राजा ने तदनन्तर कहा कि यह तुमने क्या किया। मैं तो तन्मय होकर सामने खड़ी हुई शकुन्तला के दर्शन का आनन्द ले रहा था, पर तुमने स्मरण दिलाकर मेरी प्रिया को पुनः चित्र में परिवर्तित कर दिया। राजा दुष्यन्त पुनः कहते हैं कि नींद न लगने के कारण मैं उससे स्वप्न में भी नहीं मिल पाता और सदा आँसू रहने के कारण उसे चित्र में भी नहीं देख पाता।[15]

कालिदास के मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटक में भी चित्रकला के उदाहरण प्राप्त होते हैं। मालविकाग्निमित्रनाटक के प्रथम अंक में रानी का किसी कुशल चित्रकार से अपने चित्र बनवाने का वर्णन है। मालविका का चित्र रानी के चित्र के बिल्कुल समीप है। एक दिन रानी (प्रत्यग्रवर्णरागां) नवीन रंग लगे चित्र को ध्यान से देख रही थी इतने में राजा आ गये ''चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्यावलोकयन्ती तिष्ठति। भर्त्ता चोपस्थितः।[16] तथा चित्र में उन्हीं के पास खड़ी हुई बालिका को देखकर रानी ने पूछा– उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्त्ता चित्रगताया दैव्याः परिजनमध्यगतामासन्नदारिकां दृष्टवा देवी पृष्टा''।[17] राजा ने मालविका को नृत्याचार्य गणदास के आचार्यत्व की परख के लिये कुशल शिष्या मालविका का नृत्य कराया तथा मालविका की रूप–माधुरी का दिग्दर्शन करके उन्होंने विदूषक से कहा–

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशंकि मे हृदयम्।
सम्प्रतिं शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता।।[18]

मालविकाग्निमित्र के चतुर्थ अंक में प्रतिकृति चित्र (व्यक्ति–चित्र) का वर्णन है। राजा–शंके में प्रतिकृतिं निदिंशति[19] मालूम होता है कि यह मेरा चित्र दिखला रही है। बकुलाबालिका मालविका को चित्र में विद्यमान महाराज को दिखलाती है।[20] मालविका कहती है– ''सखि तदासंभ्रमदृष्टे भर्तु रूपे यथा न वितृष्णास्मि तथाद्यापि मया भावितोऽवितृष्णदर्शनो भर्ता'[21] हे सखि उस दिन घबराहट में मैं महाराज के सुन्दर रूप को अच्छी तरह नहीं देख सकी थी, आज इस चित्र में उन्हें अच्छी तरह देखकर भी मेरा चित्त भरा नहीं है। तत्पश्चात चित्र में महाराज इरावती की ओर प्रेम–परिपूर्ण दृष्टि से देखते हुए अंकित है जिसे देखकर मालविका ईष्या करती है[22] और रूठ जाती है। तभी राजा समीप आकर कहते हैं कि हे कमलनयनी, तुम इस चित्र में बने हुए मेरे भावों को देखकर क्यों कुपित हो रही हो[23] तुम्हारे सामने असाधारण दास के रूप में उपस्थित हूँ।

कालिदास विरचित विक्रमोर्वशीय नाटक में प्रतिष्ठानपुर के राजा महाराज विक्रमादित्य (पुरूरवा) ने इन्द्रसभा की प्रमुख अप्सरा उर्वशी की केशी नामक दानव से जिस दिन रक्षा की थी उसी दिन से उसके प्रति आसक्ति हो गयी। विदूषक से मन–बहलाव का हेतु पूछा। तब विदूषक ने कहा– अथवा तंत्रभवत्या उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलकं आलिख्यावलोकयँस्तिष्ठतु[24] चित्रफलक पर उर्वशी को अंकित करके उसे बैठे देखते रहे। प्रत्युत्तर में राजा कहते हैं कि[25] कामदेव के वाणों से पीड़ित मैं स्वप्न समागम भी नहीं कर सकता, क्योंकि चित्र को समाप्त किए बिना ही मेरी आँखे आँसुओं से भर जायेगी और चित्र अधूरा रह जायेगा। इस तरह से चित्र में भी नहीं मिल सकता। इसी अंक में चेटी एक स्थान पर माणवक (विदूषक) की आकृति की तुलना में चित्र में बने हुए वानर से करती है– अहो आलेख्य वानर इव किमपि मन्त्रयन्निभृत आर्य माणवकस्तिष्ठति।[26]

कालिदास चित्रकला के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। वे चित्र के माध्यम से निर्जीव को सजीव का आभास कराने की चेष्टा में कुशल थे। यही कारण है कि कालिदास ने अपने काव्यों एवं नाटकों में कला के विभिन्न रूपों का दर्शन कराया है। कालिदास ने अपने नाटकों में चित्रकला का सहज प्रयोग वस्तु एवं स्थिति के अनुसार भावों को सजीवता प्रदान करने के लिये किया है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि यह कला सत्यमेव परमानन्ददायिनी होती है।

संदर्भ–सूची

1. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र 1.113 बटुकनाथ शर्मा, बनारस।
2. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक 12.
3. वात्सायन, कामसूत्र, अधिकरण–1, अध्याय–3
4. कालिदास ग्रन्थावली – अभिज्ञानशाकुन्तलम्– द्वितीय अंक, श्लोक 9, पेज–371
5. चित्रकर्मपरिचयेनांगेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वेः–अभिज्ञानशाकुन्तलम् – चतुर्थ अंक– पेज नं0 400
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– षष्ठ अंक, पेज नं0 439
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– षष्ठ अंक, पेज नं0 440
8. यद्यत साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत्तदन्यथा।
   तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम्।। अभिज्ञान शाकुन्तलम्–षष्ठ अंक श्लोक–14,पेज नं0 440
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – पेज नं0– 440
10. स्विन्नांगुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
   अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्णिकोच्छ्वासात्।। अभिज्ञान शाकुन्तलम्– षष्ठ अंक श्लोक–15
11. अभिज्ञान शाकुन्तलम्– षष्ठ अंक श्लोक–441

12. अभिज्ञान शाकुन्तलम्– षष्ठ अंक श्लोक–17

13. अभिज्ञान शाकुन्तलम्– षष्ठ अंक श्लोक–18

14. अभिज्ञान शाकुन्तलम्– षष्ठ अंक पेज– 443

15. प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।

वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रुष्टुं चित्रगतामपि।। अभिज्ञान शाकुन्तलम्–षष्ठ अंक, श्लोक–22

16. मालविकाग्निमित्रम्– प्रथमोऽक पेज नं0 571

17. मालविकाग्निमित्रम्– प्रथमोऽक पेज नं0 571

18. मालविकाग्निमित्रम्– द्वितीय अंक श्लोक–2, पेज–587

19. मालविकाग्निमित्रम्– चतुर्थ अंक पेज–623

20. नन्वेष चित्रगतो भर्ता – मालविकाग्निमित्र चतुर्थ अंक– पेज नं0 623

21. मालविकाग्निमित्र– चतुर्थ अंक, पेज 624

22. चित्रगतं भर्तारं परमार्थतः संकलप्यासूयति

23. कुप्यसि कुवलनयने चित्रार्पित चेष्टया किमेतन्मे–मालविकाग्निमित्र–चतुर्थ अंक, श्लोक–10, पेज–625

24. विक्रमोर्वशीयम्– द्वितीय अंक पेज–496

25. न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्यं तां।

मम नयनोरूद्वाष्पत्वं सखे न भविष्यति।। विक्रमोर्वशीयम्– द्वितीय अंक, श्लोक –10, पेज–497

26. विक्रमोर्वशीयम्– द्वितीयअंक– पेज 486